समाजशास्त्र और इसकी वैज्ञानिक प्रकृति

विजय कुमार
वरिष्ठ प्रवक्ता, समाजशास्त्र विभाग
बी0 एस0 एन0 वी0 पी0 जी0 कॉलेज, लखनऊ(उ0 प्र0)-226001, भारत
kvijay297@gmail.com

समाजशास्त्र के उद्भव से पहले भी समाज के बारे में अध्ययन हुये थे जैसे कौटिल्य का अर्थशास्त्र और अरस्तु के पॉलिटिक्स में राजनीतिक व्यवस्था के बारे में विश्लेषण किया गया है जो आज भी समाजविज्ञानियों के लिए महत्वपूर्ण है परन्तु उन्नीसवीं शताब्दी में समाज का एक नया विज्ञान पैदा हुआ। समाजशास्त्र के उदय की जो परिस्थितियां थीं, वह थी– बौद्धिक और सामाजिक। समाजशास्त्र को जानने के चार स्रोत हैं – राजनीतिक दर्शन, इतिहास दर्शन, जीवदर्शन का विकास सिद्धान्त और सामाजिक–राजनीतिक सुधारों के आन्दोलन, जिनके लिए सामाजिक स्थितियों का सर्वेक्षण जरूरी हो गया था।[1] उन्नीसवीं सदी के पूर्वाद्ध में हीगल और सेंट साइमन के लेखन के कारण इतिहास दर्शन एक प्रमुख बौद्धिक प्रभाव बन गया। इन दो चिन्तकों का प्रभाव मार्क्स और कोंत के लेखन पर और फिर आधुनिक समाजशास्त्र की कुछ महत्वपूर्ण प्रवृत्तियों पर पड़ा।[2]

आधुनिक समाजशास्त्र का दूसरा महत्वपूर्ण तत्व सामाजिक सर्वेक्षण है। समाजशास्त्र में प्राकृतिक विज्ञानों की पद्धतियाँ मानव समाज के अध्ययन में लागू की जा सकती हैं और दूसरी सामाजिक समस्या गरीबी है। औद्योगिक समाजों में गरीबी कोई प्राकृतिक परिघटना नहीं बल्कि मानवीय अज्ञान या शोषण का परिणाम है। सामाजिक विकास में परिवर्तन भौगोलिक खोजों, ग्रहीय व्यवस्था के बारे में जानकारी तथा एक जगह से दूसरे जगह आने जाने के कारण सांस्कृतिक मिलन विभिन्नता ने अध्ययन को बढ़ाया। इतिहास दर्शन केवल चिन्तन की उपज नहीं था, यह दो क्रान्तियों, इग्लैण्ड की औद्योगिक क्रान्ति (1760), तथा फ्रान्स की राजनीतिक क्रान्ति (1789) का भी परिणाम था।[3] अट्ठारहवीं शताब्दी में सामाजिक विज्ञानों को प्रायः भौतिक विज्ञान के ढांचे पर समझा जाता था। उन्नीसवीं सदी में इसे जीवविज्ञान की तर्ज पर ढाला गया, जिससे साफ हो जाता है कि आमतौर पर समाज की धारणा किसी जीव की तरह की जाती है और सामाजिक विकास के सामान्य नियम सूत्रबद्ध करने की कोशिश की जाती है। आगस्त कोंत ने अनुभव किया कि मानव का उद्विकास 19वीं शताब्दी में 'प्रत्यक्षवादी स्तर' में पहुंच गया और सामाजिक दुनिया को अच्छा समाज बनाने और समझने के लिए आनुभाविक ज्ञान का प्रयोग किया जा सकता है।[4] कोंत ने इस नये विज्ञान का नाम सोशियोलॉजी रखा था, यह शब्द लैटिन शब्द सोशियस और ग्रीक शब्द लोगस से निकला था, इसलिए एक बार उन्होंने इस शब्द के 'दोगले चरित्र को लेकर पछतावा' जाहिर किया, लेकिन बाद में कहा कि 'इस व्यूत्पत्तिमूलक गड़बड़ी के बावजूद..... इसका एक लाभ है, क्योंकि इससे उन दो ऐतिहासिक स्रोतों–एक बौद्धिक, दूसरा सामाजिक का पता चलता है जिससे आधुनिक सभ्यता पैदा हुई।[5] समाजशास्त्र की नींव (जड़) सामाजिक दर्शन में है, जो निश्चित रूप से विज्ञान नहीं है। समाजशास्त्र के उद्भव के समय इसको विज्ञान बनाने का विचार आया। कोंत हमेशा कहते थे कि समाजशास्त्र विज्ञान जैसा ही है, उन्होंने एक स्थान पर समाजशास्त्र को 'विज्ञानों की रानी' भी कहा है।[6] राबर्ट वीरस्टीड ने 1960 के इस्टर्न सोशियोलॉजिकल सोसाइटी के अध्यक्षीय भाषण में कहा कि,'' समाजशास्त्र ने न केवल विज्ञानों के बीच में अपनी उचित जगह बनायी बल्कि कलाओं के बीच में भी, जो मानव मस्तिष्क को उदार बनाता है।[7]

समाजशास्त्र की प्रकृति कैसी है– इस सम्बन्ध में दो विचार प्रचलित हैं। कुछ लोगों का मानना है कि समाजशास्त्र की प्रकृति वैज्ञानिक है तथा कुछ का मानना है कि यह विज्ञान नहीं है। जिन विचारकों का यह मानना है कि समाजशास्त्र विज्ञान नहीं है वह लोग विज्ञान को संकुचित रूप में देखने का प्रयास किया है। इस संदर्भ में यह जानना आवश्यक है कि विज्ञान क्या है। वस्तुतः विज्ञान एक दृष्टिकोण है किसी समस्या, परिस्थिति या तथ्य को सुव्यवस्थित ढंग से समझने के प्रयास को हम वैज्ञानिक दृष्टिकोण कह सकते हैं। इससे यह स्पष्ट है कि विज्ञान अपने आप में एक विषय वस्तु नहीं है, बल्कि विश्लेषण की एक विधि का नाम है। स्टूअर्ट चेस ने स्पष्ट रूप से कहा है कि विज्ञान का सम्बन्ध पद्धति से है, न कि विषय वस्तु से।[8] प्रत्येक विज्ञान का प्रारम्भ जिज्ञासा से होता है और इसका समाधान ढूंढा जाता है। प्रत्येक कार्य का कारण, कार्य–कारण सम्बन्ध, श्रृंखला तथा अन्तर्सम्बन्धों की छानबीन करते–करते सिद्धान्त की पृष्ठभूमि तैयार होती है। समाजशास्त्र में अनेक प्रकार के सिद्धान्त एवं अवधारणाओं की स्थापना हो चुकी है। वैज्ञानिक अनुसंधानों और समाजशास्त्रीय सिद्धान्त निर्माण में हम भाषा एवं प्रतीकों का प्रयोग करते हैं।[9] संकल्पनाओं से सिद्धान्तों का निर्माण होता है। परिभाषाओं से संकल्पनाएं बनती है। परिभाषा पदों की व्यवस्था होती है जैसे– भाषा का वाक्य, तर्क के प्रतीक, गणित की गणना जो अनुसंधानकर्ता को संकल्पना द्वारा निर्दिष्ट किये जा रहे घटनाओं के बारे में सूचित करता है।[10] किसी वास्तविक घटना की प्रतीकात्मक अभिव्यक्ति अवधारणा कहलाती है। समाजशास्त्र में सामाजिक घटनाओं के व्यवस्थित अध्ययन एवं अन्वेषण के पश्चात् जिन वास्तविकताओं का उद्घाटन किया जाता है उन्हें समाजशास्त्रीय सिद्धान्त कहा जाता है। फेयरचाइल्ड के अनुसार, अनुभवात्मक तथ्यों पर आधारित वह सामान्यीकरण जो विश्वसनीय हो तथा जिसमें सामाजिक घटनाओं की व्याख्या की जा सके, समाजशास्त्रीय सिद्धान्त कहलाता है।[11]

ज्ञान रेक्स ने समाजशास्त्री सिद्धान्तों के स्वरूप की तीन प्रवृत्तियों का उल्लेख किया है, जो निम्नलिखित हैं–[12]

1. तथ्यात्मक स्वरूप – इस स्वरूप की विशेषता यह है कि इसमें आगमन अथवा जीवशास्त्रीय विधि का अनुसरण करते हुये प्रत्यक्ष अवलोकन पर प्राप्त तथ्यों का वर्गीकरण एवं तुलना करके सिद्धान्त निर्माण किया जाता है।
2. वैज्ञानिक स्वरूप – नियमों की खोज को वैज्ञानिकता का लक्षण माना जाता है। कोंत ने प्रत्यक्ष अवलोकन के आधार पर सामाजिक घटनाओं से सम्बन्धित नियमों की खोज पर बल दिया है।
3. कार्य–कारण सम्बन्ध – दुर्खीम और मैक्स वेबर ने सामाजिक घटनाओं के कार्य–कारण सम्बन्ध की व्याख्या की है।

दूसरी शताब्दी ई0 पूर्व टालेमी का ब्रह्माण्ड सम्बन्धी विचार अरस्तु के उस विचार कि, पृथ्वी एक गोलाभ आकृति की है और वह ब्रह्माण्ड के मध्य में स्थित है और सभी आकाशीय पिण्ड उसके चारों ओर गोलाकार कक्षा में चक्कर लगाते हैं, से मेल खाता है। यह सिद्धान्त सत्रहवीं शताब्दी के समय तक मान्य रहा।[13] 'खोज के महान युग' के पश्चात् सूर्य केन्द्रीय विचारधारा पोलैण्ड निवासी निकोलस कोपरनिकस जिसने 1497 ई0 और 1597 ई0 के बीच ग्रहों, चन्द्रमा और तारों के अनेक प्रेक्षण किये और यह स्थापित किया कि सभी ग्रह सूर्य की परिक्रमा करते हैं। केपलर ने 1618 ई0 में यह सिद्ध किया था कि ग्रहों का संचरण गोलाकार न होकर दीर्घवृत्ताकार मार्ग में संचरण करते हैं। गैलिलियों ने सन् 1623 ई0 में यह प्रमाण प्रस्तुत किया कि कोपरनिकस का ब्रह्माण्ड सम्बन्धी सूर्य केन्द्रीय सिद्धान्त सही था। न्यूटन ने 1686 ई0 में अपना गुरूत्वाकर्षण के नियम प्रस्तुत किये। इन विकासों ने वैज्ञानिक क्रान्ति को प्रोत्साहित किया और एक विशिष्टीकरण का युग आरम्भ हुआ जिसनें भौतिक, जैविक और सामाजिक विज्ञानों के विभाजन के वर्गीकरण को जन्म दिया।[14] ज्ञान हमेशा संचित होकर आगे के दौर में पहुंचता है। इसको थामस कुहन 'प्रतिमान परिवर्तन' (पैराडाइम शिफ्ट) कहते हैं। उनका मानना है कि विज्ञान के भीतर विकास एक क्रमिक प्रक्रिया नहीं है बल्कि यह एकाएक घटित हो जाती है। एकाएक परिवर्तनों को ही प्रतिमान परिवर्तन कहते हैं। जब रूपावली में बदलाव होता है तो वह स्थिति होती है, जब पिछले सिद्धान्त निरर्थक नजर आने लगते हैं। हर अगला सिद्धान्त ज्ञान का संचय करके आगे बढ़ता है। समाजशास्त्र के उद्भव में इन सिद्धान्तों का योगदान अधिक रहा।

एक पृथक विज्ञान के रूप में समाजशास्त्र का उदय उन्नीसवीं शताब्दी में हुआ। यूरोप उस समय फ्रांसीसी तथा औद्योगिक क्रान्तियों के कारण अन्ततः परिवर्तनों के दौर से गुजर रहा था। इन दोनों क्रान्तियों से पूर्व यूरोप में चौहदवीं से अट्ठारहवीं शताब्दी के बीच हुई वाणिज्यिक क्रान्ति एवं वैज्ञानिक क्रान्ति से जूझ रहा था। इन दो क्रान्तियों के काल को पुर्नजागरण युग कहा गया।[15] पुनर्जागरण काल में अनेक आविष्कार हुए जिससे समाज को समझने में आसानी हुई, जिन चीजों को रहस्य की दृष्टि से देखा–समझा जाता था, उसको वैज्ञानिक आविष्कार ने उस रहस्य पर से पर्दा ही उठा दिया जैसे चित्रकला, चिकित्सा, रासायनिकी, समुद्री यात्राओं और खगोल विद्या के क्षेत्र में। पुर्नजागरण काल के बाद भौतिकी, गणित और जीवविज्ञान के क्षेत्र में आये परिवर्तनों ने समाज के अध्ययन के क्षेत्र में क्रान्तिकारी परिवर्तन हुए। धार्मिक कारणों से शरीर के चीड़–फाड़ की इजाजत नहीं थी, परन्तु इन आविष्कारों से शरीर की रचना और क्रियाओं को अच्छे ढंग से समझने में सहायता मिलने लगी। विलियम हार्वे ने रक्त प्रवाह की खोज की। इन सबसे नये चिंतन को बल मिला। अब मनुष्य के शरीर को विभिन्न कोशिकाओं और परस्पर सम्बद्ध प्रणालियों से देखा जाने लगा। डार्विन ने अपनी पुस्तक 'डिसेंट आफ मैन' के माध्यम से कहा कि मनुष्य का पूर्वज बन्दर जैसा प्राणी था, जिसका अनेक शताब्दियों में मनुष्य के रूप में विकास हुआ। इस पुस्तक ने समाज को उत्तेजित कर दिया तथा विकासवादी विचारकों ने इनके सिद्धान्त को सामाजिक जगत में लागू किया।

डार्विन ने अपनी पुस्तक ''ओरिजिन आफ स्पेशीज बाई मीन्स ऑफ नेचुरल सेलेक्शन'' में यह बताया कि अस्तित्व के लिए संघर्ष होता है और जो जीवित बचते हैं वे अपने पर्यावरण से, अपने प्रतियोगी की अपेक्षा अधिक अनुकूलित होते हैं। स्टोडार्ट ने 1966 में यह सुझाव दिया था कि डार्विन के कार्यों में निम्नलिखित विषय खोजे जा सकते हैं[16]–

1. समय के द्वारा परिवर्तन अथवा विकास, क्रमिक की एक सामान्य धारणा अथवा निम्न से उच्च में परिवर्तन अथवा अधिक जटिल आकार में परिवर्तन।
2. समाज और संगठन।
3. संघर्ष और प्राकृतिक चयन।
4. प्रकृति में परिवर्तन के अवसर के लक्षण।

कोंत ने माना कि मनुष्य का दिमाग और सामाजिक विकास तीन चरणों में होता है – हर घटना एक दूसरे से जुड़ी होती है जैसे–

1. सहअस्तित्व का नियम (ग्रहीय व्यवस्था, जैवकीय व्यवस्था, सामाजिक व्यवस्था इत्यादि)।
2. अनुक्रम का नियम– क) स्थैतिक (आकार, संरचना)
   ख) गतिक (परिवर्तन, विकास)

कोंत ने 'त्रिस्तरीय नियम' का प्रतिपादन किया।

1. धार्मिक स्तर
2. तात्विक स्तर
3. प्रत्यक्षवादी या वैज्ञानिक स्तर।

कोंत ने विज्ञानों का एक संस्तरण दिया जिसमें पहला विज्ञान स्वतन्त्र और किसी पर आश्रित नहीं है, परन्तु जैसे–जैसे विज्ञान क्रमशः आगे बढ़ता जाता है पराश्रयिता बढ़ती जाती है जैसे–गणित, खगोलशास्त्र, भौतिकशास्त्र, रसायनशास्त्र, जीवशास्त्र और समाजशास्त्र। कोंत को प्रत्यक्षवाद का जन्मदाता कहा जाता है। प्रत्यक्षवाद का अर्थ है 'वैज्ञानिक'। कोंत का विचार है कि समग्र ब्रह्माण्ड 'अपरिवर्तनीय प्राकृतिक नियमों' द्वारा व्यवस्थित तथा निर्देशित होता है और यदि इन नियमों को समझना है तो धार्मिक या तात्विक आधारों पर नहीं अपितु विज्ञान की विधियों द्वारा ही समझा जा सकता है। वैज्ञानिक विधियों में कल्पना का कोई स्थान नहीं, ये तो निरीक्षण, परीक्षण, प्रयोग और वर्गीकरण की एक व्यवस्थित कार्य प्रणाली होती है। इस प्रकार निरीक्षण, परीक्षण, प्रयोग और वर्गीकरण पर आधारित वैज्ञानिक विधियों के द्वारा सब कुछ समझना और उससे ज्ञान प्राप्त करना ही प्रत्यक्षवाद है।[17]

समाजशास्त्र का अंग्रेज पिता हरबर्ट स्पेंसर ने भौतिकी के नियमों के आधार पर समाज की व्याख्या की, उन्होंने कहा कि सभी चीजों में बदलाव की प्रक्रिया प्रकृति के हृदय में मौजूद है जिसको स्पेंसर 'उद्विकास' नाम दिया। यह कहना पूरी तरह से निराधार है कि उद्विकास का विचार डार्विन के जैविकीय उद्विकास से उधार लिया गया है। स्पेंसर ने उद्विकासीय सिद्धान्त देने से पहले भौतिकी के कुछ प्रमेय को बताया है। ये प्रमेय निम्नलिखित हैं–[18]

1. शक्ति के स्थायित्व का नियम
2. पदार्थ की अविनाशिता का नियम
3. गति के सातत्य का नियम
4. शक्तियों के बीच सम्बन्धों के स्थायित्व का नियम
5. शक्तियों के रूपान्तरण और सामंजस्य का नियम
6. न्यूनतम प्रतिरोध और महत्तम आकर्षण का नियम
7. गति के आवर्तन या परिवर्तन का नियम

स्पेंसर का मानना है कि प्रकृति की सभी घटनाएं–तारें, ग्रहीय व्यवस्था, ग्रह एवं उपग्रह की व्यवस्थाएं, जैविकीय अवयव, प्रजातियों का विकास और सभी परिवर्तित मनोवैज्ञानिक तथा समाजशास्त्रीय मनुष्यों के प्रयोग और व्यवहार की प्रक्रियाएं एक निश्चित प्रतिमान में परिवर्तित होती हैं। परिवर्तन की सभी प्रक्रियाएं सरल से जटिल, जटिल से जटिलतर होती जाती हैं। इस गति के दौरान संरचना और प्रकार्य में जटिल विभेदीकरण और विशेषीकरण बढ़ता जाता है।[19] उद्विकासीय प्रक्रिया में कोई भी व्यवस्था समरूपता से विषमरूपता में परिवर्तित होती है। समरूपता अस्थिर होती है। इसमें गुणात्मक वृद्धि होती है और व्यवस्था अलग–अलग पड़ जाती है तथा पुनः इसमें सामंजस्य स्थापित हो जाता है। किसी भी समाज की अवस्था पहले बहुत सरल होती है, फिर यौगिक समान बनता है, द्विगुण यौगिक समाज, त्रिगुण यौगिक समाज तथा अन्त में सभ्यता का स्तर आता है।

रेमण्ड एरन ने अपनी पुस्तक 'मेन करेन्ट्स इन सोशियोलॉजिकल थाट' में दुर्खीम के समाजशास्त्रीय योगदान में दार्शनिक व्याख्या की अपेक्षा वैज्ञानिक विश्लेषण को अधिक महत्वपूर्ण बताया है। समाजशास्त्र में तथ्यों की व्याख्या करने के पश्चात् उसने सामाजिक तथ्यों के अध्ययन के लिए वैज्ञानिक पद्धति के उपयोग पर बल दिया है। समाजशास्त्र को एक व्यवस्थित और वास्तविक विज्ञान के रूप में प्रतिष्ठित करने के लिए दुर्खीम ने प्राकृतिक विज्ञानों की अध्ययन पद्धति को अपनाना आवश्यक समझा है।[20] दुर्खीम ने सामाजिक तथ्यों के अध्ययन में अवलोकन हेतु तीन नियमों की चर्चा की है।[21]

1. पूर्वमान्यताओं का निराकरण
2. विषयवस्तु की व्याख्या
3. वैयक्तिक तथ्यों तथा सामाजिक तथ्यों की प्रथकता।

इन सब आधारों पर समाजशास्त्र की नींव रखने वाले समाजशास्त्रियों ने अपने इस नवीन विषय को वैज्ञानिक अध्ययन पद्धतियों के आधार पर अध्ययन के लिए जोर देने का प्रयास किये। विज्ञान, पद्धति पर आधारित है, विषय पर नहीं। दुर्खीम ने सामाजिक घटनाओं के लिए उस पद्धति के प्रयोग पर बल दिया जिसका प्रयोग करके भौतिक विज्ञानों का विकास हुआ है। बोगार्ड्स लिखते हैं कि, ''दुर्खीम आंशिक रूप से एक प्रत्यक्षवादी और सामाजिक क्रिया के अध्ययन के लिए भौतिक विज्ञान की पद्धति के उपयोग में विश्वास करने वाला था।[22] एलेक्स इंकेल्स लिखते हैं कि, ''समाजशास्त्र एक व्यवहारिक विज्ञान है''[23] क्योंकि यह संवेग, आवेग, भावनाएं इत्यादि का अध्ययन भी करता है जबकि प्राकृतिक विज्ञान मूल्यरहित विज्ञान है। वेबर ने अपनी पुस्तक 'प्रोटस्टेण्ट इथिक एण्ड स्पिरिट आफ द कैपिटेलिज्म' में मूल्यों और विचारों के आधार पर पूंजीवाद के उदय को वैज्ञानिक आधार पर व्याख्यायित किया है। कार्ल पियर्सन ने विज्ञान का सम्बन्ध किसी विशेष अध्ययन वस्तु से न मानकर वैज्ञानिक पद्धति से माना है।

समाजशास्त्र मानव समाजों और मानव व्यवहारों का वैज्ञानिक अध्ययन है जो विभिन्न समूहों से समाज का निर्माण करते हैं।[24] विज्ञान और गणित की अद्वितीय प्रगति के साथ–साथ उसी के समानान्तर मानव विकास के सिद्धान्त ने 'मानवता के विज्ञान' के लिए राह सुगम बनाई, जो भौतिक विज्ञानों के साथ–साथ खड़ा हो सका। इंग्लैण्ड में फ्रांसिस बेकन, फ्रांस में रेने डेस्कार्टे, ब्लेस पास्कल, जर्मनी में लेबनीज ऐसे दर्शनिक हैं, जिसने सत्रहवीं शताब्दी के वैज्ञानिक आविष्कारों के सामाजिक महत्व को पहचाना।[25] शिफर ने समाजशास्त्र की परिभाषा देते हुए कहा कि, समाजशास्त्र सामाजिक व्यवहारों और मानव समूहों का व्यवस्थित अध्ययन है। सामाजिक घटनाओं के वैज्ञानिक अध्ययन हेतु शिफर ने निम्नलिखित आरेख के माध्यम से विधि को बताया है–

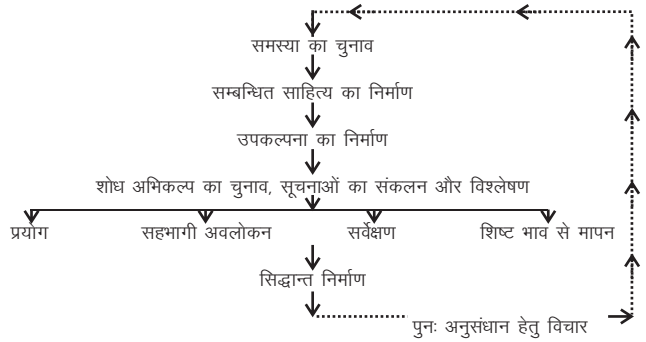

(स्रोत : शिफर : 1989:39)[26]

सामाजिक विज्ञानों में शोध हेतु डब्लू0 सी0 स्क्लूटर ने निम्नलिखित चरणों के द्वारा प्रस्तुत किया है।[27]

1. शोध के क्षेत्र अथवा विषय का चुनाव।
2. शोध की समस्या को समझने के लिए क्षेत्र का सर्वेक्षण।
3. एक पुस्तक सूची का निर्माण।
4. समस्या को परिभाषित करना।
5. समस्या के तत्वों का विभाजन तथा रूपरेखा का निर्माण।
6. समस्या के तत्वों का, आंकड़ों अथवा प्रमाणों के साथ उनके सम्बन्धों (प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष) के आधार पर वर्गीकरण करना।
7. समस्या के तत्वों के आधार पर उन आंकड़ों तथा प्रमाणों का निर्धारण, जिनकी आवश्यकता होगी।
8. आवश्यक आंकड़ों या प्रमाणों की उपलब्धि का अनुमान लगाना।
9. समस्या के हल होने की सम्भावना की जांच।
10. आंकड़ों तथा सूचनाओं का संकलन।
11. विश्लेषण के लिए आंकड़ों को नियमित व व्यवस्थित करना।
12. आंकड़ों व प्रमाणों का विश्लेषण व निर्वचन।
13. प्रस्तुतीकरण हेतु आंकड़ों को व्यवस्थित करना।
14. विशिष्ट कथनों, सन्दर्भों तथा पादटिप्पणियों का चुनाव व उपयोग करना।
15. शोध विवरण प्रस्तुत करने हेतु स्वरूप व शैली को विकसित करना।

समाजशास्त्र के संस्थापक सदस्यों ने समाजशास्त्र को विज्ञान बनाने का प्रयास किया। सामाजिक घटनाओं के अध्ययन में वैज्ञानिक पद्धतियों का प्रयोग किया। बाद के समाजशास्त्रियों ने विभिन्न समाजशास्त्रीय परिप्रेक्ष्य (उपागम) विकसित किये जिसको टर्नर ने पांच भागों में बांटा है।[28]

1. प्रकार्यात्मक सिद्धान्त
2. द्वन्द्व सिद्धान्त
3. विनिमय सिद्धान्त
4. अन्तःक्रियावाद सिद्धान्त
5. संरचनात्मक सिद्धान्त

वर्तमान समय में अधिकांश समाजशास्त्री वैज्ञानिक समाजशास्त्र की पद्धतियों को परिष्कृत करने में लगे हुये हैं। समाजशास्त्र में विज्ञानवाद के कारण अनेक प्रकार के असंतोष उभरे हैं। एक ओर विज्ञान व तकनीकी विकास के कारण सामाजिक, सांस्कृतिक व व्यक्तिगत जीवन में असमानता व असामंजस्य उभरी है दूसरी ओर समाजशास्त्रियों ने विज्ञानवाद के कारण समाजशास्त्रीय अध्ययनों की सीमाओं को भी समझा है। मनुष्य व समाज का यथार्थ इतना जटिल व परिवर्तनशील है कि मात्र वैज्ञानिक पद्धतियों से ही उसको पूर्णरूपेण समझना व परखना सम्भव नहीं हो सकता।[29] एक छठा उपागम नृजाति पद्धतिशास्त्र का विकास इन्हीं आधारों व पृष्ठभूमि के अन्तर्गत हुआ है, जिसके प्रणेता गारफिंकल हैं।

निष्कर्ष

अतः हम यह पाते हैं कि समाजशास्त्र एक व्यवहारिक विज्ञान है जिसकी अध्ययन पद्धति वैज्ञानिक है।

संदर्भ

1. बाटमोर, टी0 बी0(2004) अनुवादक प्रधान गोपाल, समाजशास्त्र, ग्रन्थ शिल्पी (इंडिया) प्राइवेट लिमिटेड दिल्ली, पृ0 12।
2. तदैव, पृ0 12।
3. तदैव, पृ0 13।
4. टर्नर, जे0 एच0(1995) द स्ट्रक्चर ऑफ सोशियोलॉजिकल थ्योरी, रावत पब्लिकेशन्स जयपुर, पृ0 39।
5. बाटमोर, टी0 बी0(2004) पृ0 22।
6. इंकेल्स एलेक्स(2003) ह्वाट इज सोशियोलॉजी ? प्रिन्टिस हाल ऑफ इण्डिया, प्राइवेट लिमिटेड, न्यू दिल्ली, पृ0 93।
7. तदैव, पृ0 93।
8. सिंह, जे0 पी0(2010) समाजशास्त्र, अवधारणाएं एवं सिद्धान्त, पी0 एच0 आई0 लर्निंग प्राइवेट लिमिटेड, न्यू दिल्ली, पृ0 31।
9. सिंह, डॉ0 सुरेन्द्र, समाजशास्त्र की मूल अवधारणाएं, वाराणसी प्रकाशन मंदिर, वाराणसी, 1993 पेज 03
10. टर्नर, जे0 एच0(1995) पृ0 05।
11. सिंह, सुरेन्द्र(1993) पृ0 08।

12. तदैव, पृ0 11।
13. हुसैन, माजिद(2004) भौगोलिक चिन्तन का इतिहास, रावत पब्लिकेशन्स जयपुर, पृ0 48।
14. तदैव, पृ0 113।
15. इग्नू, ई0 एस0 ओ0–13, पृ0 16।
16. हुसैन, माजिद(2004) पृ0 156।
17. मुखर्जी, रवीन्द्र नाथ(1973) सरस्वती सदन जवाहर नगर, दिल्ली, पृ0 46।
18. फिचर, रोनाल्ड(2000) द मेंकिग ऑफ सोशियोलोजी, ए स्टडी ऑफ सोशियोलॉजिकल थ्योरी, खण्ड 1, रावत पब्लिकेशन्स, जयपुर और नई दिल्ली, पृ0 257।
19. तदैव, पृ0 259।
20. वर्मा, ओमप्रकाश(1995) दुर्खेम–एक अध्ययन, विवेक प्रकाशन, जवाहर नगर, दिल्ली, पृ0 22।
21. तदैव, पृ0 26–28।
22. तदैव, 1995 पृ0 378–379।
23. इंकेल्स, एलेक्स(2003) पृ0 19।
24. कोर्नब्लस, बिलियम(1988) सोशियोलॉजी इन ए चेंजिंग वर्ल्ड, हाल्ट, रिनेहार्ट एण्ड विन्स्टन, इन्क, न्यूयार्क, द ड्राईडेन प्रेस, सौन्डर्स कॉलेज पब्लिशिंग, पृ0 04।
25. तदैव, पृ0 07।
26. शिफर, रिचर्ड टी0(1989) सोशियोलॉजी, मैक्ग्रा–हिल्स, इंक, न्यूयार्क, पृ0 39।
27. मुखर्जी, रवीन्द्र नाथ(1996) सामाजिक शोध एवं सांख्यिकी, विवेक प्रकाशन, जवाहर नगर, दिल्ली, पृ0 19–20।
28. टर्नर, जे0 एच0(1995) पृ0 32।
29. सिन्धी, नरेन्द्र कुमार(1998) समाजशास्त्रीय सिद्धांत, रावत पब्लिकेशन्स, जयपुर, पृ0 90।